प्रथम विश्वयुद्ध के समाप्त होने के पश्चात् सन् 1919 में पेरिस में एक शान्ति सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इस सम्मेलन में पराजित देशों के साथ अलग-अलग सन्धियाँ की गयी थीं। इसके अतिरिक्त मित्रराष्ट्रों ने विश्व-शान्ति की स्थापना करने तथा पारस्परिक बातचीत के द्वारा समस्याओं का समाधान करने की दृष्टि से राष्ट्र-संघ का भी गठन किया था। राष्ट्र-संघ के सभी सदस्य राज्यों ने विश्व-शान्ति कायम करने तथा विभिन्न राज्यों की क्षेत्रीय अखण्डता एवं राष्ट्रीय एकता की रक्षा करने की शपथ ली थी। किन्तु राष्ट्र-संघ अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सका। दूसरी तरफ जर्मनी, जापान, इटली तथा स्पेन में तानाशाही शक्तियों का उदय हुआ जिन्होंने महाद्वीप की शान्ति को खतरा उत्पन्न कर दिया। इन शक्तियों की आक्रामक एवं साम्राज्य विस्तारवादी नीति के कारण सम्पूर्ण विश्व में ठीक वैसा ही वातावरण बन गया जैसा कि प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने के समय था। अन्ततः सन् 1939 में महान् शक्तियों के मध्य युद्ध प्रारम्भ हो गया और मात्र बीस वर्ष पश्चात् ही विश्व की जनता को दूसरी बार महायुद्ध के जहर को पीने के लिए बाध्य होना पड़ा।

द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण
[CAUSES OF THE SECOND WORLD WAR]

Scanned by CamScanner

के प्रारम्भ के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी था। प्रो. मुकर्जी का कथन है—"आरोपित सन्धि को स्वीकार करने के लिए विवश किये जाने के कारण जर्मन जनता ने स्वयं को अत्यन्त अपमानित अनुभव किया, और उनके मस्तिष्क में अन्याय का बदला लेने की कटु भावना का उदय हुआ।... विजेता शक्तियों की अदूरदर्शिता और स्वार्थपरता इस युद्ध के लिए उतनी ही अधिक उत्तरदायी थी जितनी कि हिटलर की आक्रामक नीति।"[1]

तानाशाही का उदय (Rise of Dictatorship)

दोनों विश्वयुद्धों के मध्य बीस वर्ष का समय तानाशाही का युग कहा जा सकता है। इस अवधि में यूरोप के विभिन्न देशों—विशेषतः जर्मनी, जापान व स्पेन में तानाशाही की भावना का उदय अत्यन्त तीव्र गति से हुआ। जर्मनी का तानाशाह हिटलर था। उसने जर्मनी की तत्कालीन गणतन्त्रीय सरकार की कमजोरियों का लाभ उठाकर सन् 1933 में शासन पर अधिकार कर लिया तथा देश में अपनी तानाशाही की स्थापना की। वह वार्साय सन्धि तथा राष्ट्र-संघ से घृणा करता था। उसने वार्साय सन्धि की शर्तों का उल्लंघन करके जर्मनी की सैनिक शक्ति का तीव्र गति से विकास किया। निरस्त्रीकरण के उद्देश्य से जिनेवा में आयोजित किये गये सम्मेलन का बहिष्कार करके तथा राष्ट्र-संघ की सदस्यता से त्यागपत्र देकर हिटलर ने यह सिद्ध कर दिया कि सैनिक शक्ति के बल पर जर्मनी के साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। उसने आस्ट्रिया एवं चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार कर लिया। इसके अतिरिक्त उसने 1 सितम्बर, 1939 को ज्यों ही पोलैण्ड पर आक्रमण किया, द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया।

तानाशाही की भावना का विकास इटली में भी प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् तीव्र गति से हुआ था। मित्रराष्ट्रों के विश्वासघातपूर्ण व्यवहार से इटली की जनता में भयंकर असन्तोष व्याप्त हो गया। उसने यह अनुभव किया कि पेरिस सम्मेलन में इटली को उसके न्यायोचित हिस्से से वंचित कर दिया गया था। इसीलिए यह कहा जाता है कि मित्रराष्ट्रों ने युद्ध में विजय तो प्राप्त की थी, किन्तु इससे महाद्वीप की शान्ति भंग हो गयी। इस असन्तोष के कारण इटलीवासियों ने वार्साय की सन्धि तथा पेरिस सम्मेलन के अन्य निर्णयों की कटु आलोचना की, तथा उन्होंने इन निर्णयों का उल्लंघन करना प्रारम्भ कर दिया। इटली में फासिस्ट दल तथा मुसोलिनी की तानाशाही का उदय इन्हीं परिस्थितियों के फलस्वरूप हुआ था।

इसी प्रकार स्पेन एवं जापान में भी तानाशाही की भावना का उदय हुआ। स्पेन में प्रतिक्रियावादी नेता जनरल फ्रेंको ने हिटलर व मुसोलिनी के सहयोग से गणतन्त्रवादियों को गृह-युद्ध में पराजित किया तथा अपनी तानाशाही की स्थापना की। जापान ने भी प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् जर्मनी व इटली के साथ एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये जिसके फलस्वरूप विश्व के राजनीतिक पटल पर "रोम-बर्लिन-टोकियो" धुरी का निर्माण हुआ। इस धुरी ने विश्व-शान्ति को भंग करने तथा यूरोप महाद्वीप की तात्कालिक राजनीतिक व्यवस्था को भंग करने में महत्वपूर्ण भाग लिया था।

प्रजातन्त्र और एकतन्त्र के सिद्धान्तों में संघर्ष (Conflict between Democracy and Autocracy)

द्वितीय विश्वयुद्ध वस्तुतः दो विरोधी सिद्धान्तों—प्रजातन्त्र एवं एकतन्त्र—के मध्य संघर्ष का परिणाम था। इंगलैण्ड, फ्रांस और अमेरिका प्रजातन्त्र के

Scanned by CamScanner

फासिज्म के सिद्धान्त का समर्थन जर्मनी, इटली एवं जापान द्वारा किया गया। इस प्रकार दो परस्पर विरोधी सिद्धान्तों के समर्थक देशों के मध्य संघर्ष अनिवार्य था। एक बार मुसोलिनी ने कहा था—"दो विश्वों के मध्य संघर्ष किसी समझौते की आज्ञा नहीं देता। या तो हम रहेंगे या वे रहेंगे।"

कूटनीतिक सन्धियाँ (Diplomatic Treaties)

पेरिस शान्ति सम्मेलन में यह निश्चय किया गया था कि राष्ट्र-संघ के सदस्य राज्य किसी भी देश के साथ कोई सन्धि नहीं करेंगे। इस प्रकार की सन्धियों को राष्ट्र-संघ के संविधान के विरुद्ध समझा जायेगा तथा ऐसे राज्यों के विरुद्ध दण्डनीय कार्यवाही की जायेगी। इस निर्णय के बावजूद यूरोपीय देशों के मध्य अनेक गुप्त एवं स्पष्ट सन्धियाँ सम्पन्न की गयीं जिनके परिणामस्वरूप यूरोप महाद्वीप का स्पष्टतया दो भागों में विभाजन हो गया। एक वर्ग का नेतृत्व फासिस्ट शक्तियों के हाथों में था। इन शक्तियों ने पेरिस सन्धि का तीव्र विरोध किया तथा इसकी व्यवस्थाओं का उल्लंघन करके तानाशाही के सिद्धान्तों का समर्थन किया। दूसरे वर्ग में फासिस्ट-विरोधी राज्य—फ्रांस, पोलैण्ड, रूमानिया, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया—थे। विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने के बाद रूस फासिस्ट वर्ग में सम्मिलित हो गया तथा ग्रेट ब्रिटेन व अमेरिका ने फ्रांस के नेतृत्व में प्रजातन्त्रीय वर्ग में सम्मिलित होना उचित समझा। इस प्रकार कूटनीतिज्ञ सन्धियों के फलस्वरूप यूरोप महाद्वीप का दो विरोधी समूहों में विभाजन हो गया जिसके कारण द्वितीय विश्वयुद्ध अनिवार्य हो गया।

सैनिकवाद (Militarism)

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि वार्साय सन्धि के माध्यम से मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी का पूर्ण निरस्त्रीकरण करके सैनिक दृष्टि से उसे अपाहिज बना दिया था। इस सन्धि के द्वारा जर्मनी को अपनी सेना को कम करने, युद्ध-सामग्री के उत्पादन तथा उसके आयात व निर्यात को बन्द करने के लिए विवश कर दिया गया। स्वाभाविक रूप से जर्मनी को इतनी कठोर एवं अपमानजनक शर्तों से सन्तोष नहीं हुआ अत: प्रारम्भ से ही उसने इन शर्तों का उल्लंघन करके अपनी सैनिक शक्ति में वृद्धि करने का निश्चय कर लिया। सन् 1933 में हिटलर ने सत्ता में आते ही जर्मनी के समस्त नागरिकों के लिए सैनिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया। दूसरी तरफ, प्रथम विश्वयुद्ध में विजय प्राप्त करने के बावजूद फ्रांस, जर्मनी से सदैव भयभीत रहता था। इसलिए उसने भी अपनी सैनिक शक्ति का विस्तार किया। इंगलैण्ड को हिटलर की आक्रामक नीति के कारण अपनी सैनिक स्थिति को सुदृढ़ करना पड़ा। इस प्रकार सन् 1933 के पश्चात् यूरोप के प्राय: सभी देश अपनी सैनिक शक्ति का विकास करने में जुट गये थे। जापान ने भी अपनी सैनिक स्थिति को सुदृढ़ कर लिया और वह एशिया महाद्वीप में एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया। संक्षेप में, सभी देश सैनिकवाद की भावना से प्रभावित थे। सन् 1938 में यूरोप महाद्वीप की स्थिति ठीक वैसी थी जैसी कि सन् 1914 में थी। इस प्रकार हथियारबन्दी की होड़ तथा सैनिकवादी भावना ने द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि का निर्माण किया था।

साम्राज्यवाद (Imperialism)

साम्राज्यवाद की भावना का उदय व विकास भी द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए उत्तरदायी कारक था। इस भावना ने यूरोप के लगभग सभी देशों को प्रभावित किया था। यद्यपि पिछली घटनाओं से सभी देशों को इस बात का ज्ञान हो गया था कि साम्राज्यवाद ने प्रथम विश्वयुद्ध

Scanned by CamScanner

में विनाशकारी भूमिका निभाई थी, तथापि उन्होंने इस भावना का त्याग नहीं किया। पेरि शान्ति-सम्मेलन में यूरोप महाद्वीप का नवीन मानचित्र तैयार किया गया था, किन्तु जर्मनी, इट जापान आदि साम्राज्यवादी दृष्टिकोण वाले देशों ने इस सम्मेलन के निर्णयों की अवहेल करके अपने साम्राज्यों के विस्तार के लिए हर सम्भव प्रयास किये। हिटलर एवं मुसोलिनी तो साम्राज्य विस्तार को अपनी विदेश नीतियों का आधार ही बना दिया। इसी भावना से प्रे होकर हिटलर ने राइनलैण्ड, मेमल, आस्ट्रिया तथा चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार करके इ अपने साम्राज्य में मिला लिया। जापान ने मंचूरिया पर अधिकार कर लिया। इसी प्रक मुसोलिनी ने विभिन्न राज्यों पर अधिकार करके एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की।

फासिस्टवादी शक्तियों के साम्राज्यवादी दृष्टिकोण को देखते हुए फ्रांस व रूस ने स 1935 में एक समझौते पर हस्ताक्षर किये जिसका उद्देश्य जर्मनी, इटली व जापान व साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं पर रोक लगाना था। इसके अतिरिक्त फ्रांस ने जर्मनी के विरु अपनी स्थिति को सुरक्षित करने के लिए बेल्जियम, पोलैण्ड, यूगोस्लाविया, रूमानिया औ चेकोस्लोवाकिया के साथ अलग-अलग सन्धियाँ कीं। इस प्रकार साम्राज्यवादी भावना के फलस्वरूप यूरोप के महान् देशों के मध्य मतभेद एवं कटुता का उदय हुआ।

राष्ट्र-संघ की अकुशलता एवं अयोग्यता (Inefficiency and Unworthiness of the League of Nations)

राष्ट्र-संघ की स्थापना यूरोपीय शक्तियों के पारस्परिक विवादों को सुलझाने और विश्व में स्थायी शान्ति बनाये रखने के लिए की गयी थी। यद्यपि इस दिशा में राष्ट्र-संघ ने अत्यधिक प्रयास किये, तथापि इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि यह महान् संस्था विश्व शान्ति के उद्देश्य को पूरा करने में पूर्णतः असफल रही। बहुत-से देशों ने संघ के संविधान का उल्लंघन किया तथा इसकी सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। चूँकि राष्ट्र-संघ के पास अपने निर्णयो को लागू कराने के लिए प्रभावपूर्ण मशीनरी का अभाव था इसलिए यह संस्था बड़ी शक्तियों के विवादों को हल कराने तथा शान्ति स्थापित करने में सफल नहीं हो सकी। जापान-मंचूरिया युद्ध, जापान-चीन युद्ध तथा इटली-अबीसीनिया युद्ध के समय राष्ट्र-संघ कोई सफल तथा प्रभावी कदम नहीं उठा सका। इन असफलताओं ने राष्ट्र-संघ की निर्बलता, अयोग्यता व अकुशलता को सिद्ध कर दिया। लोकार्नो समझौता तथा केलौग-ब्रिआं समझौता (Kellog-Briand Pact) सम्पन्न होने के बावजूद यूरोपीय देशों के पारस्परिक मतभेदों को समाप्त नहीं किया जा सका।

मित्रराष्ट्रों में परस्पर मतभेद (Mutual Differences in Allies)

मित्रराष्ट्र अपने निजी स्वार्थों में लिप्त होने तथा पारस्परिक एकता के अभाव में हिटलर व मुसोलिनी के विरुद्ध कोई संगठनात्मक कदम उठाने में सफल नहीं हो सके। मित्रराष्ट्रों ने इन तानाशाही की शक्ति का प्रतिरोध करने के स्थान पर तुष्टिकरण की नीति को अपनाया। फ्रांस, इंगलैण्ड व अमेरिका के मध्य मतभेदों का उदय वार्साय सन्धि के तुरन्त पश्चात् हो गया था। इंगलैण्ड और अमेरिका जर्मनी के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहते थे। वे वार्साय सन्धि की शर्तों को भी जर्मनी के लिए अधिक उदार बनाने के पक्षधर थे। किन्तु फ्रांस ने अपने मित्रों के इस प्रस्ताव का कड़ा विरोध किया। वस्तुतः फ्रांस जर्मनी को इतना कमजोर करना चाहता था कि भविष्य में वह प्रतिशोध न ले सके। यही कारण है कि मित्रराष्ट्रों की इच्छा के बावजूद फ्रांस अपनी सैनिक शक्ति को कम करने के लिए किसी भी स्थिति में तैयार नहीं हुआ। दूसरी तरफ, अपने व्यापारिक हितों के कारण इंगलैण्ड, जर्मनी के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाना चाहता था। इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड रूस के साम्यवाद से भी भयाक्रान्त था। जर्मनी, रूसी साम्यवाद के खतरे को रोकने के लिए इंगलैण्ड की सहायता कर सकता था। अमेरिका

Scanned by CamScanner

ने जर्मनी के विरुद्ध फ्रांस को सुरक्षा का आश्वासन दिया था किन्तु वहाँ की सीनेट ने वार्साय सन्धि को अस्वीकार कर दिया जिसके कारण अमेरिका को अपना निर्णय वापस लेना पड़ा। इंगलैण्ड ने भी फ्रांस को उसकी सुरक्षा का आश्वासन देने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार इंगलैण्ड और अमेरिका की नीति से फ्रांस को घोर निराशा हुई जिसके कारण उसे पोलैण्ड, बेल्जियम, चेकोस्लोवाकिया आदि राज्यों के साथ सुरक्षात्मक सन्धियाँ करने को विवश होना पड़ा।

इस तरह यूरोप में तानाशाही के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए मित्रराष्ट्र संगठित नहीं रह सके। हिटलर ने रूस तथा मित्रराष्ट्रों के मतभेदों का पूरा लाभ उठाया। उसने रूस के विरुद्ध जहरीला प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। यदि मित्रराष्ट्र इस संकट की घड़ी में रूस की सहायता करते तो रूस भी हिटलर तथा मुसोलिनी के विरुद्ध मित्र देशों को अपना पूर्ण समर्थन प्रदान करता। किन्तु मित्र-देशों ने रूस की साम्यवादी सरकार पर विश्वास नहीं किया। उन्होंने उसे म्यूनिख सम्मेलन में भी आमन्त्रित नहीं किया। फलतः रूस मित्र-देशों से रुष्ट हो गया और उसने मित्र-देशों के सबसे प्रबल शत्रु जर्मनी के साथ एक समझौता कर लिया। इस समझौते को यूरोप के इतिहास में "सोवियत-जर्मन अनाक्रमण समझौता" (Soviet-German Non-Aggression Pact) के नाम से पुकारा गया। इस तरह परस्पर अविश्वास एवं फूट के कारण मित्र-देश कमजोर हो गये और वे तानाशाही की शक्ति व प्रभाव को रोकने में सफल नहीं हो सके।

युद्ध का तात्कालिक कारण—हिटलर द्वारा पोलैण्ड पर आक्रमण (Immediate Cause of War—Hitler's Invasion on Poland)

पेरिस शान्ति-सम्मेलन में लिये गये निर्णय के अनुसार पोलैण्ड को स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया गया था। समुद्र-तट तक पहुँचने के लिए पोलैण्ड को जर्मनी की सीमा में होकर एक गलियारा (Corridor) भी दे दिया गया था जो डेंजिग के बन्दरगाह तक पहुँचता था। सम्मेलन का यह निर्णय जर्मनी की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के प्रतिकूल था। हिटलर ने अपने देशवासियों को जर्मनी की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने का आश्वासन दिया। उसकी विदेश-नीति का लक्ष्य वृहत्तर जर्मनी का निर्माण करना था। वह उन समस्त देशों पर अधिकार करना अपना कर्तव्य समझता था, जहाँ पर जर्मन जनता निवास करती थी। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उसने आक्रामक नीति को अपनाया तथा यूरोप के अनेक देशों पर आक्रमण किये। इस नीति में सफलता प्राप्त करते हुए हिटलर ने राइन प्रदेश, आस्ट्रिया, चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार कर लिया तथा इटली व जापान के सहयोग से "रोम-बर्लिन-टोकियो धुरी" का निर्माण किया। मेमल पर अधिकार करने के पश्चात् हिटलर ने पोलैण्ड पर आक्रमण करने की योजना बनायी। उसने पोलैण्ड से माँग की कि डेंजिग क्षेत्र को तुरन्त जर्मनी को सौंप दिया जाय क्योंकि इस क्षेत्र के अधिकांश निवासी जर्मन थे। उसने यह भी माँग की कि पोलैण्ड के गलियारे को तुरन्त समाप्त कर दिया जाय। उस समय इंगलैण्ड व फ्रांस हिटलर व मुसोलिनी के प्रति तुष्टिकरण की नीति का पालन कर रहे थे। उन्होंने इन तानाशाहों की शक्ति को रोकने के स्थान पर उन्हें सन्तुष्ट करने के अथक प्रयास किये। मित्र-देशों के इन प्रयासों ने हिटलर के उत्साह को बढ़ा दिया।

पोलैण्ड ने हिटलर की माँगों को अस्वीकार कर दिया। वस्तुतः पोलैण्ड इंगलैण्ड व फ्रांस के सैनिक सहयोग पर पूरी तरह निर्भर था। ब्रिटिश सरकार ने तुष्टिकरण की नीति को त्याग कर हिटलर को चेतावनी दी कि यदि उसने पोलैण्ड पर आक्रमण किया तो इंगलैण्ड पूरी

Scanned by CamScanner

शक्ति के साथ पोलैण्ड को सहयोग प्रदान करेगा। किन्तु हिटलर ने ग्रेट ब्रिटेन की चेतावनी की चिन्ता किये बिना 1 सितम्बर, 1939 ई. को पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। चूँकि ब्रिटेन सरकार पोलैण्ड की सहायता के लिए आश्वासन दे चुकी थी, इसलिए उसने 3 सितम्बर को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस प्रकार सन् 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम
[RESULTS OF THE SECOND WORLD WAR]

द्वितीय विश्वयुद्ध छः वर्ष की लम्बी अवधि तक निरन्तर चलता रहा, और अन्ततः सन् 1945 में इसका अन्त हुआ। यह विश्व की सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी। वस्तुतः यह एक सभी दृष्टियों से एक विश्वयुद्ध था। इस युद्ध में मित्र-देशों को सफलता मिली तथा केन्द्रीय शक्तियाँ बुरी तरह पराजित हुईं। इस युद्ध ने तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के साथ-साथ मानव जीवन के सभी पहलुओं को अत्यधिक प्रभावित किया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के कुछ प्रमुख परिणाम निम्नलिखित थे :

जन-धन का अत्यधिक विनाश (Great Destruction of Lives and Property)

द्वितीय विश्वयुद्ध पूर्ववर्ती युद्धों की तुलना में सर्वाधिक विनाशकारी युद्ध माना जाता है। इस युद्ध में सम्पत्ति और मानव-जीवन का विशाल पैमाने पर जो विनाश हुआ, उसका सही आँकलन विश्व के गणितज्ञ भी नहीं कर सके। इस युद्ध का क्षेत्र विश्वव्यापी था तथा इसके विनाशकारी परिणामों का क्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक था। युद्ध के विश्वव्यापी क्षेत्र की व्याख्या करते हुए प्रो. मुकर्जी ने लिखा है—"यह युद्ध आर्कटिक क्षेत्र के बर्फीले मैदानों, उत्तरी अफ्रीका के रेगिस्तानों, बर्मा के जंगलों, एटलाण्टिक महासागर तथा सुदूर पूर्व में प्रशान्त महासागर के द्वीपों—अर्थात् सम्पूर्ण विश्व के सभी क्षेत्रों में लड़ा गया था।"[1]

इस युद्ध में अनुमानतः एक करोड़ पचास लाख सैनिकों तथा एक करोड़ नागरिकों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा तथा लगभग एक करोड़ सैनिक बुरी तरह घायल हुए। मानव जीवन की क्षति के साथ-साथ यह युद्ध अपार आर्थिक क्षति, बरबादी तथा विनाश की दृष्टि से भी अविस्मरणीय है। ऐसा अनुमान है कि इस युद्ध में भाग लेने वाले देशों का लगभग एक लाख करोड़ रुपये व्यय हुआ था। अकेले इंगलैण्ड ने लगभग दो हजार करोड़ रुपये व्यय किया था जबकि जर्मनी, फ्रांस, पोलैण्ड आदि देशों के आर्थिक नुकसान का अनुमान लगाना कठिन है। इस प्रकार इस युद्ध में विश्व के विभिन्न देशों की राष्ट्रीय सम्पत्ति का व्यापक पैमाने पर विनाश हुआ था।

यूरोपीय शक्तियों के औपनिवेशिक साम्राज्य का अन्त (End of Colonial Empire of European Powers)

द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप एशिया महाद्वीप में स्थित यूरोपीय शक्तियों के औपनिवेशिक साम्राज्य का अन्त हो गया। जिस प्रकार प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् बहुत से राज्यों को स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गयी थी, ठीक उसी प्रकार भारत, लंका, बर्मा, मलाया, मिस्र

---

1 "Its battles were fought in all the quarters of the globe—in the ice flows of the Arctic region, in the deserts of North Africa, in the jungles of Burma, in the Atlantic Ocean and in the islands of the Pacific in the Far East."
—*Prof. Mookerjee*

Scanned by CamScanner